प्रवचन-७९, गाथा-८२, बुधवार, कार्तिक शुक्ल ११, दिनांक ३१-१०-१९७९

नियमसार, गाथा ८२।

टीका:—यहाँ, भेदविज्ञान द्वारा क्रम से निश्चय-चारित्र होता है... क्या कहते हैं? भेदज्ञान द्वारा भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यवस्तु, राग / विकल्प से भिन्न है, क्योंकि नवतत्त्व में पुण्य-पाप तत्त्व, वह आत्मा से भिन्न है। इस भेदज्ञान द्वारा। व्यवहार, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि भाव, वह राग है। राग से भगवान आत्मा को भेदज्ञान द्वारा-भिन्नता द्वारा.. आहाहा!

यहाँ, भेदविज्ञान द्वारा क्रम से... क्रम से क्यों लिया है? कि पहले तो आत्मा का सम्यग्दर्शन होता है। राग और पुण्य-पाप का विकल्प जो है, उससे भिन्न वस्तुस्वभाव शुद्ध परिपूर्ण ऐसा जो आत्मा, (उसका) राग से भिन्न होकर अनुभव होता है, तब सम्यग्दर्शन होता है। लोगों को बात कठिन पड़ती है।

यहाँ तो कहते हैं कि दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का भाव है, वह विकार की प्रवृत्तिरूप भाव है। उस प्रवृत्ति से निवृत्ति और शुद्धस्वभाव में प्रवृत्ति। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान! मार्ग ऐसा सूक्ष्म है। जन्म-मरण के अन्त लाने की बात है। वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा की आज्ञा में तो यह है। प्रभु! तू शुद्धचैतन्यघन है न! इस व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प राग है, वह तो आस्रव है, बन्ध का कारण है। उससे भेदज्ञान करना अर्थात् उस ओर का लक्ष्य छोड़ना और शुद्ध चैतन्य ज्ञानानन्दस्वभाव से भरपूर प्रभु, उस ओर झुकने से राग से भिन्न होकर प्रथम सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

अनन्त काल हुआ परिभ्रमण करते हुए। अपना निज स्वरूप, उस राग के विकल्प से भिन्न शुरुआत में करना चाहिए, वह किया नहीं। आहाहा! पहले वह करना है। आहाहा! यह देह तो मिट्टी, जड़, धूल है। कर्म, वह मिट्टी-अजीव धूल है। वह तो अपनी पर्याय में वह शरीर और कर्म है नहीं। पर्याय अर्थात् अवस्था और द्रव्य-गुण अर्थात् त्रिकाली ध्रुव। पर्याय में शरीर और कर्म नहीं है। पर्याय में राग-द्वेष मिथ्याभ्रम और भ्रान्ति, यह पर्याय में है। इससे भेद करना। इसका अर्थ कि पर्यायदृष्टि छोड़कर द्रव्यदृष्टि शुद्ध चैतन्य पूर्ण स्वरूप का अनुभव करना, यह प्रथम में प्रथम भेदज्ञान का क्रम है। आहाहा! ऐसा स्वरूप

है। दूसरों को कठिन लगे। दूसरा मार्ग है या यह और कहाँ से निकाला ? ऐसा बेचारे कहते हैं, कहते हैं। क्या हो ? भाई ! मार्ग तो अनादि का यह है।

तीर्थंकर, केवली, अनन्त परमात्माओं का यह फरमान है। यह कहेंगे, मैंने मेरी भावना के लिए यह बनाया है। कुन्दकुन्दाचार्य अन्तिम गाथा में कहते हैं। मैंने मेरी भावना के लिए बनाया है। तुम्हें इसमें से समझना हो तो समझ लो। आहाहा ! मेरी भावना तो राग से भिन्न ऐसा मेरा आत्मा है, ऐसा मेरा अनुभव है और आगे क्रम-क्रम से जो राग की अस्थिरता है, उसे भी छोड़कर स्वरूप की दृष्टि में ज्ञायक चिदानन्द आया, उसमें राग से भिन्न होकर ज्ञायकभाव में स्थिर होना, रमणता करना, वह चारित्र है। आहाहा ! कठिन काम है। नग्नपना या पंच महाव्रत के परिणाम, वे कोई चारित्र नहीं हैं। नग्न (शरीर की दशा) तो जड़, मिट्टी, धूल है। वह आत्मा में नहीं है।

आत्मा में पर्याय में विकार है। तो कहते हैं कि उस विकार से भेद करना। आहाहा ! पर्याय / अवस्था में पुण्य-पाप के भाव हैं, उन्हें अपना मानकर अनादि से मिथ्यात्व भ्रम में भटकता है, तो एक बार प्रभु ! उससे भेदज्ञान कर। आहाहा ! जैसे कंकर से गेहूँ भिन्न है। कंकर। गेहूँ, गेहूँ कंकर से भिन्न है; इसी प्रकार अन्दर पुण्य और पाप के भाव मलिनरूपी कंकर से प्रभु तो भिन्न है। आहाहा ! समझ में आया ? यह 'क्रम' शब्द लिया है। है ?

भेदविज्ञान द्वारा क्रम से... क्रम से अर्थात् सम्यग्दर्शन के पहले एकदम चारित्र नहीं होता। आहाहा ! सम्यक् अर्थात् सत्यदर्शन, पूर्ण आनन्ददल प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड आत्मा, अतीन्द्रिय ज्ञान का अनन्त स्वभाव, बेहद जिसका ज्ञान-आनन्दस्वभाव, ऐसी चीज़ जो अनन्त गुण का धाम। भगवान अनन्त गुण का गोदाम है। तुम्हारे गोदाम में तो करोड़-अरब की चीज़ रहती है। इस गोदाम में तो अनन्त गुण रहते हैं। आहाहा ! कितने अनन्त ? कि जिस अनन्त का अन्त नहीं। आहाहा ! अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. उसे अनन्त गुणा गुणित करो तो भी पार नहीं आता, इतने अनन्त गुण अन्दर हैं। ध्रुव। अनन्त गुण का पिण्ड, प्रभु ! प्रथम में प्रथम क्रम में चारित्र प्राप्त होने से पहले, उस राग से भिन्न होकर, चैतन्य की दृष्टि / सम्यग्दर्शन उत्पन्न करना, वह प्रथम मार्ग है। माणिकलालभाई ! ऐसा स्वरूप है, भाई ! क्या हो ? लोगों ने तो यह सुना नहीं होगा। यह करो.. यह करो.. यह करो.. व्रत करो, तप करो, अपवास करो, यह करो। यह तो अनन्त

बार किया है, भाई! यह तो राग की क्रिया है। धर्म के नाम से धमाधम चली है। राग की क्रिया में धर्म माना है।

जो तत्त्व ज्ञायकतत्त्व से भिन्न राग पुण्यतत्त्व है। नव तत्त्व है न? जीव, अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। यह पुण्य के परिणाम दया, दान, व्रत के परिणाम तो पुण्यतत्त्व है और हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना, यह पापतत्त्व है। दोनों आस्रवतत्त्व है, दोनों बन्ध है। आहाहा! इन पुण्य-पाप के आस्रव और बन्धतत्त्व से भगवान अन्दर अबन्धस्वरूप चिदानन्द है, (वह भिन्न तत्त्व है)। शब्दों से पार नहीं पड़ता, प्रभु! वस्तु ऐसी है। आहाहा!

अपनी सत्ता पूर्ण है, उसका अवलम्बन लेकर निर्विकल्प सम्यग्दर्शन प्रथम क्रम में प्रगट करना, यह क्रम है। और इस क्रम के पश्चात् **निश्चय-चारित्र होता है...** पश्चात् राग की अस्थिरता रहती है। आत्मा को राग से भिन्न किया होने पर भी राग की अस्थिरता रहती है। अत: उस राग की अस्थिरता से भी भिन्न होकर ज्ञायक चैतन्यमूर्ति जो दृष्टि में आया है, वह ज्ञायकभाव जो दृष्टि में आया है, उसमें लीन होना, राग से भिन्न होकर लीन होना, वह चारित्र है। अब ऐसी व्याख्या कठिन पड़ती है। बनियों को धन्धे के कारण निवृत्ति नहीं मिलती और ऐसी बातें। आहाहा! समझ में आया?

पहली लाईन, लीटी को क्या कहते हैं? पंक्ति। पहली लाईन में इतना भरा है। पश्चात् कहते हैं कि **पूर्वोक्त पंच रत्नों से शोभित...** पाँच गाथा कही न? पंच रत्न गाथा। गाथा को रत्न कहा है। यह आत्मा / रत्न को बतलानेवाली है, इसलिए पंच रत्न कहा है। भगवान सच्चिदानन्द प्रभु पूर्ण अतीन्द्रिय ज्ञान, आनन्द और प्रभुता के स्वभाव से अतीन्द्रिय प्रभुता-ईश्वरता के स्वभाव से भरा प्रभु है। इन पंच रत्न को रत्न कहा था। इन **पंच रत्नों से शोभित...** पंच रत्नों से शोभित। आहाहा!

अर्थपरिज्ञान (-पदार्थों के ज्ञान) द्वारा... पदार्थ अर्थात् भगवान आत्मा और पुण्य-पाप भी पदार्थ हैं। नौ पदार्थ हैं। नौ पदार्थों में अपने आत्मा का पदार्थ ज्ञान करके, पुण्य-पाप पर है, ऐसा ज्ञान करके **पंचम गति की प्राप्ति के हेतुभूत...** आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य अपनी बात करते हैं। पंचम काल में दो हजार वर्ष पहले हुए। भगवान के पास गये थे। सीमन्धर भगवान विराजते हैं, वहाँ गये थे। वहाँ आठ दिन रहे थे। आकर यह सन्देश लाये

हैं। आहाहा! कोई व्यक्ति परदेश में जाए तो कहे, साहेब! क्या लाये? हमारे लिए क्या लाये? इसी प्रकार उस परदेश में परमात्मा के पास गये थे। आहाहा! भरतक्षेत्र के मनुष्य पूछते हैं, प्रभु! तुम क्या लाये? वहाँ जाकर क्या लाये? तो कहते हैं, यह लाये। आहाहा! ऐई!

पंचम गति की प्राप्ति के हेतुभूत... चार गति नहीं। नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति, देवगति, यह तो चार गति भटकने के दुःख हैं। चार गति, वह तो दुःख है। आहाहा! **पंचम गति की प्राप्ति के हेतुभूत, ऐसा जीव का और कर्मपुद्गल का भेद-अभ्यास होने पर,...** आहाहा! भगवान ज्ञान और आनन्दस्वरूप प्रभु तथा पुण्य और पाप सब पुद्गलस्वरूप, ऐसा **जीव का और कर्मपुद्गल का भेद-अभ्यास होने पर,...** आहाहा! भेद-अभ्यास का अर्थ कि भेद का अनुभव करने पर.. आहाहा! अन्दर परमात्मस्वरूप आत्मा 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो हि है कर्म, यही वचन से समझ ले जिन प्रवचन का मर्म।' जिन सो ही है आत्मा, जिन वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा है। अरे! कैसे जँचे? आहाहा! जिन सो ही है आत्मा—भगवान आत्मा जिनस्वरूपी है। पुण्य-पाप के राग से भिन्न है। 'जिन सो ही है आत्मा अन्य सो हि है कर्म।' पुण्य और पाप आदि दो भेद किये न? दो भेद किये न?

जीव का और कर्मपुद्गल का भेद-अभ्यास... आहाहा! 'जिन सो ही है आत्मा अन्य सो हि है कर्म।' यह दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध, यह सब पुद्गल के परिणाम हैं। आहाहा! 'यही वचन से समझ ले जिन प्रवचन का मर्म।' तीन लोक के नाथ वीतराग परमात्मा की वाणी का सार यह है। आहाहा! **जीव का और कर्मपुद्गल का भेद-अभ्यास होने पर,...** भेदज्ञान से अनुभव किये जाने पर। आहाहा! **उसी में जो मुमुक्षु सर्वदा संस्थित रहते हैं,...** राग से भिन्न होकर आत्मा में सम्यग्दर्शन हुआ, पश्चात् उस स्वरूप में स्थित रहते हैं। आहाहा! मुमुक्षु-मोक्ष के अभिलाषी जीव। **उसी में जो मुमुक्षु सर्वदा संस्थित रहते हैं,...** सर्वदा। आहाहा! चारित्र की व्याख्या चलती है न? आहाहा!

अतीन्द्रिय आनन्द में सर्वदा संस्थित। सर्वदा और संस्थित। सर्व काल में अन्दर आनन्द में विशेष रमण करते हैं। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द में स्थित रहते हैं। वह पंचम गति का हेतु है। सिद्ध का हेतु यह है। आहाहा! अन्दर है या नहीं? आहाहा! **जीव का और कर्मपुद्गल का भेद-अभ्यास होने पर, उसी में जो मुमुक्षु सर्वदा...** आत्मा में लीन रहते हैं। आहाहा! वीतरागस्वभाव में लीन रहते हैं, वह चारित्र है। आहाहा! **मुमुक्षु सर्वदा**

संस्थित रहते हैं,.. सर्वदा और सं-सम्यक् प्रकार से स्थित। आहाहा! आनन्द का नाथ भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का दल, उसके स्वाद में लीन रहते हैं। आहाहा! अपने अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में लीन रहना, वह चारित्र है। अरे! ऐसी व्याख्या।

वे उस (सतत भेदाभ्यास) द्वारा... ऐसा सतत अभ्यास। आहाहा! निरन्तर रटन। राग से मेरी चीज़ भिन्न है, ऐसी निरन्तर रटन अन्दर में करते-करते अन्दर में संस्थित हो जाना। है ? **(सतत भेदाभ्यास) द्वारा मध्यस्थ होते हैं..** मध्यस्थ अर्थात् वीतरागभाव में स्थिर होते हैं। आहाहा! यह पंचम काल के सन्त, पंचम काल के श्रोता को कहते हैं कि मेरी भावना तो यह है। ऐसा मार्ग है। आहाहा! सर्वत्र से वृत्ति उठा ले और जहाँ भगवान शुद्ध चैतन्य प्रभु है, वहाँ दृष्टि लगा दे। ज्ञानस्वरूपी, आनन्दस्वरूपी प्रभु को दृष्टि में पकड़ ले और पकड़कर उसमें स्थित हो जा। सतत्-निरन्तर संस्थित हो जा। आहाहा! अरे! पंचम काल है न, प्रभु! काल-फाल आत्मा को बाधक नहीं है। आहाहा!

मध्यस्थ होते हैं... मध्यस्थ अर्थात् वीतरागभाव। किसी अनुकूल-प्रतिकूल में राग-द्वेष नहीं। मध्यस्थ है। सम्यग्दर्शन हुआ, पश्चात् स्वरूप में लीनता करके मध्यस्थ हुआ, वीतराग हुआ। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं कहते हैं, मैंने मेरी भावना के लिए बनाया है। आहाहा! पंचम काल के सन्त, उसकी टीका करते हैं। पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि (टीका करते हैं)। आहाहा! यह नियमसार पढ़ा भी नहीं होगा। है ? रखा है ? घर में रखा तो होगा। है या नहीं ? होगा तो अवश्य न! आहाहा! रत्न भरे हैं। नियमसार में तो अन्तर के रत्न हैं। आहाहा!

अपने आनन्द में सतत् स्थिर होता है। आहाहा! वह **मध्यस्थ होते हैं और उस कारण से उन परम संयमियों को...** आहाहा! इस कारण से परम संयमियों को, अन्तर आनन्द में स्थित रहने से उन परम संयमियों को। वे संयमी हैं। आहाहा! है ? **वास्तविक चारित्र होता है।** पहले ज्ञान तो करना पड़ेगा न कि चारित्र किसे कहना ? उसे वास्तविक चारित्र सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ की वाणी में आया और कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं (कहते हैं), मेरी भावना के लिए मैंने तो यह बनाया है। आहाहा! बनाया है। थोड़ा गुजराती आ जाता है। आहाहा! गाथा बहुत अलौकिक है। यह तुम्हारे पैसे, वह सब धूल है, यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! करोड़पति, दो करोड़पति, दस करोड़पति है। यह तो आत्मपति है।

आहाहा! स्वस्वामी सम्बन्ध। पूर्णानन्द का नाथ स्व-अपना स्वामी, उस स्व का स्वामी होना, इसका नाम दर्शन और चारित्र है। आहाहा! जिसमें राग, दया, दान का भी स्वामी नहीं। प्रभु! मार्ग कठिन है, भाई! आहाहा! अनन्त काल गँवाया है। कुछ-कुछ हल्का मार्ग और धीरे से आगे जाया जाए, ऐसा करके कुछ उल्टे रास्ते चढ़ गया है। मूलमार्ग में चढ़ा नहीं। आहाहा!

श्रीमद् में आता है न? श्रीमद् में, नहीं? उसमें आया है 'मूल मारग सुनो जिन का रे' श्रीमद् में आता है। 'मूल मारग सुनो जिन का रे, करि वृत्ति अखण्ड सन्मुख...' श्रीमद् राजचन्द्र, गृहस्थाश्रम में थे। तैंतीस वर्ष में देह छूट गयी। बाईस वर्ष में आत्मज्ञान हुआ था। लाखों का जवाहरात का धन्धा था परन्तु अन्दर निर्लेप दृष्टि में जैसे नारियल में गोला पृथक् रहता है, नारियल का गोला; उसी प्रकार समकिती राग से भिन्न रहता है। आहाहा! 'मूल मारग सुनो जिन का रे, करि वृत्ति अखण्ड सन्मुख...' तेरी परिणति जो पर्याय है, उसे द्रव्य सन्मुख अखण्ड कर। आहाहा! लो, ऐसा कहते हैं। मेरी भक्ति करना, उसमें तेरा कल्याण है, ऐसा नहीं कहते। तेरी वृत्ति जो परिणति है पर्याय की, उसे अन्दर अखण्ड सन्मुख कर। आहाहा! यह जैन का मूल मार्ग है। परमेश्वर त्रिलोकनाथ, जिनेश्वरदेव का यह हुक्म और आज्ञा है। आहाहा!

यह कहते हैं, ऐसे संयमी **परम संयमियों...** आहाहा! अरे! पंचम काल के मुनि कहते हैं कि हम परम संयमी हैं। आहाहा! जिन्हें अन्दर रमणता जमी है। अतीन्द्रिय आनन्द में जैसे... आहाहा! गन्ना.. गन्ना, गन्ने का रस होता है न? गटक-गटक पीते हैं, हमारी गुजराती में (गन्ने को) शेरडी कहते हैं। तुम्हारे क्या कहते हैं? गन्ना? उसका रस गटक-गटक पीते हैं। इसी प्रकार कहते हैं, धर्मात्मा संयमी अतीन्द्रिय आनन्द का रस गटक-गटक पीते हैं। आहाहा!

द्रव्यदृष्टि प्रकाश में आया है। द्रव्यदृष्टि प्रकाश है न? तुम्हें दिया है न? पढ़ा है या नहीं? पढ़ा नहीं होगा, रखा होगा।....रखा। भाई को दिया था न? सोगानी। बापू ने पढ़ा है या नहीं? सेठ को नहीं दिया? उसमें है। पुस्तक है न? सोगानी, अजमेर में बहुत बड़े लाखोंपति थे। पश्चात् तो वैराग्य हुआ और यहाँ आत्मज्ञान को प्राप्त हुए थे। समिति में, समिति के कमरे में पूरी रात ध्यान में रहे, पश्चात् उन्होंने यह बनाया। लालचन्द भाई और

शशीभाई! मोढ़... मोढ़... शशीभाई आये थे न? मोढ़... वैष्णव थे। ये दो, इन्होंने एकत्रित करके पुस्तक बनायी है। द्रव्यदृष्टि प्रकाश यह पुस्तक का नाम है। उसमें यह लिया है। सोगानी, 'निहालचन्द्र सोगानी' अजमेर के थे। अभी कलकत्ता में, अभी आये थे। (वह कहते हैं), धर्मी तो... आहाहा! चारित्रवन्त जो अन्दर है, वह तो अतीन्द्रिय आनन्द का, जैसे गन्ने का रस गटक-गटक कर पीवे, वैसे अतीन्द्रिय आनन्द का रस पीते हैं। आहाहा! उसका नाम संयम और चारित्र कहने में आता है। आहाहा! क्या कहा? देखो!

उस कारण से उन परम संयमियों को वास्तविक चारित्र होता है। वास्तव में उन्हें चारित्र होता है। आहाहा! अभी तो चारित्र किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती। यह क्रिया करना, नग्न हो गये, पंच महाव्रत के परिणाम भी सब समझने जैसे हैं। अभी तो उनके लिए चौका बनाकर (आहार) लेते हैं। मूलगुण के व्यवहार का ठिकाना नहीं है। मूलगुण का छेद करे, उसे एक भी गुण सच्चा नहीं है, ऐसा अष्टपाहुड़ में कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं कहते हैं। गन्ने का रस निकाले, आम का रस निकाले, मौसम्बी का रस, दाल, भात, सब्जी। आहाहा! बनावे। और बोले ऐसा - आहार शुद्ध, मन शुद्ध, वचन शुद्ध, काय शुद्ध। सब झूठा है। बनावे उनके लिए और कहे आहार शुद्ध है।.... बहुत फेरफार हो गया है, प्रभु! वीतरागमार्ग में बहुत फेरफार (हो गया है)। संयमी तो प्राण जाए तो भी उनके लिए पानी की एक बूँद बनी हो (प्रासुक की गयी हो) तो नहीं लेते। पानी की एक बूँद में असंख्य जीव हैं। जल.. जल की एक बूँद में असंख्य जीव। आहाहा! उसमें निगोद के जीव अन्दर होते हैं। आहाहा! अनन्त.. पानी छाने तो भी अन्दर चले जाते हैं। शास्त्र तो यहाँ तक प्रभु कहते हैं कि पानी चाहे जितना छाने.. गरणूं कहते हैं? क्या कहते हैं? मोटा कपड़ा। चाहे जितने मोटे कपड़े से तू पानी छान, परन्तु प्रभु तीर्थंकरदेव ऐसा कहते हैं कि उसमें इतने त्रस हैं कि अंगुली के असंख्य भाग में त्रस उत्पन्न होते हैं। उस पानी में त्रस भी आ जाते हैं। आहाहा! समझ में आया? पानी की एक बूँद को चाहे जितने जाड़े छन्ने (कपड़े)... गरणूं कहते हैं। कपड़ा। परन्तु उसमें अंगुल के असंख्य भाग में पानी में त्रस-कीड़े होते हैं। अंगुल का असंख्यवाँ भाग। बारीक कीड़े। उस पानी में, छाने तो भी त्रस आ जाते हैं। आहाहा! वह पानी जिसके लिए बनाया, उसके लिए तो त्रस की हिंसा, पानी की हिंसा (होती है)। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा कहते हैं **संयमियों को वास्तविक चारित्र होता है।** जिन्हें पानी की एक बूँद भी, प्राण जाए तो भी उनके लिए बनाया हुआ ले नहीं। आहाहा! और अन्तर की आनन्द की रमणता में इतनी शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. शान्ति के रस के रस में पर की कोई दरकार नहीं है। परीषह आओ, उपसर्ग आओ परन्तु उसकी दरकार नहीं है। बापू! संयम किसे कहते हैं? पंच परमेष्ठी, जिन्हें गणधर नमस्कार करते हैं। णमो लोए सव्व साहूणं। पंच नमस्कार। गणधर जो शास्त्र रचते हैं, तब उसमें आता है या नहीं? णमो लोए सव्व साहूणं। चार ज्ञान के धनी, चौदह पूर्व की अन्तर्मुहूर्त में रचना करनेवाले, वे गणधर भी जिन्हें वन्दन करें, वह मुनिपना कैसा होगा? भाई! आहाहा!

भगवान तीर्थंकर बादशाह। गणधर उनके दीवान, वे भी जब शास्त्र रचते हैं, तब णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं। णमो लोए तो... णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं, ऐसा पाठ है। णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती सिद्धाणं, णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती आइरियाणं, णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती साहूणं। ऐसा गणधर नमस्कार करते हैं। आहाहा! जिनके चरण में गणधर का नमस्कार पहुँचे, प्रभु! वह चारित्र कैसी दशा होगी! आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं, **संयमियों को वास्तविक चारित्र होता है। उस चारित्र की अविचल स्थिति के हेतु से...** स्वरूप की अन्तर रमणता, ऐसा जो चारित्र, उस **चारित्र की अविचल स्थिति...** वहाँ से चलती न हो ऐसी **स्थिति के हेतु से प्रतिक्रमणादि निश्चयक्रिया कही जाती है।** प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, समाधि, भक्ति, निश्चय आवश्यक, यह क्रिया कही जाती है। निश्चयक्रिया अन्दर की क्रिया को कहा जाता है। आहाहा! गजब बात, भाई! साधारण लोग, पंचम काल.. आहाहा! और ऐसी बातें। मार्ग तो ऐसा है, भाई! आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि **उस चारित्र की अविचल स्थिति के हेतु से...** आत्मा के सम्यग्दर्शन अनुभवसहित स्वरूप में रमणतारूपी चारित्र की **अविचल स्थिति के हेतु से प्रतिक्रमणादि...** प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, समाधि, भक्ति, आवश्यक ऐसी **निश्चयक्रिया...** आहाहा! स्वरूप की रमणता की निश्चयक्रिया **कही जाती है।** यह क्रिया।

क्रिया तीन प्रकार की है। एक यह शरीर जड़, मिट्टी, यह क्रिया जड़ की है। नाक, कान, यह जड़ की क्रिया है। अन्दर दया, दान का भाव, वह पुण्य-राग की क्रिया है।

हिंसा, झूठ के परिणाम, वह पाप की क्रिया है और इस पुण्य-पाप से रहित स्वरूप की रमणतारूपी निश्चयक्रिया है। अरे रे! आहाहा! ऐसा मार्ग है। फुरसत निकालकर, निवृत्ति लेकर इसका अभ्यास करना चाहिए। भाई! ऐसा अवसर कब मिलेगा? मनुष्यपना.. आहाहा!

एक फूल, नीम-नीम। नीम का फूल कहते हैं न? एक फूल, एक फूल में असंख्य शरीर और एक शरीर में अभी तक जितने सिद्ध हुए, उनसे अनन्त गुने जीव हैं। आहाहा! नीम, नीम। नीम का पान है, वह प्रत्येक (वनस्पति) है। उस एक पान में असंख्य शरीर और एक शरीर में एक जीव है परन्तु जो फूल है, उसमें एक राई जितना टुकड़ा लो, उसमें असंख्य तो औदारिक शरीर हैं। एक शरीर में अभी तक छह महीने आठ समय में ६०८ (जीव) मुक्ति को प्राप्त हुए, अभी तक जो सिद्ध की संख्या हुई, उससे अनन्त गुने जीव तो एक शरीर में हैं। आहाहा! वह प्रत्येक जीव भगवान परिपूर्ण स्वभाव से भरपूर है। आहाहा! द्रव्य तो ऐसा का ऐसा है। पर्याय में और विकार की अवस्था में सब अन्तर है। निगोद और नारकी, देव, यह तो सब पर्याय की बात है। वस्तु तो द्रव्यस्वभाव। आहाहा! ज्ञान और आनन्द का कन्द प्रभु! उस एक शरीर में अनन्त जीव, एक-एक जीव का ऐसा स्वभाव है। आहाहा! यह वीतराग के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं है। परमेश्वर त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ ने देखा है, वह कहा है। वह बात जिनेश्वर के अतिरिक्त कहीं नहीं है। किसी ने माना नहीं है। आहाहा! असंख्य प्रदेश सर्वज्ञ के अतिरिक्त किसी ने माने नहीं हैं। जीव के असंख्य प्रदेश हैं। आहाहा! जैसे सोने की चैन में होते हैं न? चैन, उस चैन की सौ-दो सौ कड़ियाँ होती हैं न? इसी प्रकार भगवान आत्मा में असंख्य प्रदेश कड़ी अर्थात् प्रदेश, असंख्य प्रदेश का भगवान आत्मा है। अरे रे! इन असंख्य प्रदेशों में एक-एक प्रदेश में अनन्त-अनन्त गुण पड़े हैं। आहाहा!

यह ऐसा कहते हैं, कि प्रभु! एक बार सुन तो सही। इन सबसे तेरी चीज़ अन्दर भिन्न है। ऐसी अविचल स्थिति। ज्ञान और आनन्द और ईश्वरशक्ति, ऐसा अनुभव हुआ। अब उसमें लीन होने की क्रिया, वीतरागीक्रिया, निश्चयक्रिया, सत्यक्रिया, वास्तविक आत्मा की शुद्धपरिणतिरूपी क्रिया, यह निश्चयक्रिया कहा जाता है। आहाहा! ऐसी... कही है। कुन्दकुन्दाचार्य हैं न? परन्तु पंचम काल के लोगों को, साधारण प्राणी को... बापू! साधारण नहीं, भगवान है।

मुमुक्षु : भगवान होने की योग्यता चाहिए न?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अरे! भगवान ही है। इसका स्वरूप तो भगवान है। यह भगवान है तो पर्याय में भगवान होनेवाला है। आहाहा! वह भगवानपना कहीं बाहर से नहीं आता है।

छोटी पीपर का दृष्टान्त नहीं कहा था? छोटी पीपर। पीपर है न? रंग में काली, अवगाहन इतना छोटा परन्तु अन्दर चरपराई और हरा रंग, सोलह आने—चौंसठ पहरी भरी है। चौंसठ पहरी को तुम क्या कहते हो? चौंसठ पहरी चरपराई, चरपराहट और हरा रंग सोलह आने अर्थात् चौसठ पहरी भरी है। आहाहा!

इसी प्रकार यह भगवान आत्मा क्षेत्र से भले शरीर प्रमाण दिखायी दे, परन्तु अन्दर में सोलह आने पूर्ण ज्ञान, आनन्द, शान्ति ऐसी पूर्ण शक्ति से भरपूर है, प्रभु! उस शक्ति में स्थिरता हो, उसकी बात हम करेंगे। आहाहा! अरे रे! ऐसा सुनने को नहीं मिलता और सुनने को मिले तो (कहता है), अरे! यह तो निश्चय की बातें हैं अकेली सत्य की। व्यवहार की बातें... परन्तु व्यवहार अर्थात् क्या? सुन न प्रभु! व्यवहार तो अभव्य भी अनन्त बार करता है। आहाहा!

यहाँ तो आचार्य कहते हैं, अविचल स्थिति आनन्द में-स्वरूप में रमणता करना। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्दस्वभाव, जिसका स्वभाव, जिसकी हद नहीं-मर्यादा नहीं। ऐसा बेहद आनन्द, बेहद ज्ञान, बेहद त्रिकाली श्रद्धा, बेहद शान्ति त्रिकाली - ऐसा जो स्वरूप, उसमें स्थिर होने की निश्चयक्रिया की बात हम करेंगे। आचार्य कहते हैं कि हम निश्चयक्रिया कहेंगे। व्यवहारक्रिया का निषेध है। आहाहा! कब ऐसी निवृत्ति मिले? आहाहा!

उद्योगपति ऐसा कहते थे न? अपने शाहूजी हैं न? शान्तिप्रसाद, चालीस करोड़। उद्योगपति। उद्योगपति न? उद्योग बनाया, कारखाना बनाया। कौन बनावे? सुन न, प्रभु! मिथ्यात्व और राग-द्वेष किये हैं। पर को बनाता हूँ, यह तो मिथ्यात्वभाव है। कठिन बात, भाई! आहाहा! चिमनभाई (का) सेठ वैष्णव, मुम्बई दर्शन करने आये थे। आवें तो सब आवें, राजा आवे, करोड़पति, अरबपति आवें, सब आवें। नाम सुनें, पुण्य दिखायी दे कि पुण्यशाली है। पचास करोड़ है। ये चिमनभाई उसमें नौकर थे। पचास करोड़। मुम्बई में है। आये थे। व्याख्यान में आये थे। महिलाओं को लेकर। महिलाएँ सब श्वेताम्बर जैन,

महिलाएँ सब श्वेताम्बर जैन और लड़के और आदमी सब वैष्णव और पचास करोड़। धूल में भी है नहीं, कहा।

मुमुक्षु : सुविधा से सब वस्तु ले सके।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुविधा किसे कहना ? सुविधा तो आत्मा के आनन्द में रमे, वह सुविधा है। बाकी तो सब दुविधा है। ऐसी बात है, प्रभु! सूक्ष्म पड़ती है, भाई! अरे! इसने कभी सुना नहीं और सत्य कान में पड़े तो इसे ऐसा लगता है कि अरे! यह तो निश्चय, यह तो निश्चय (तो) ऐसा करके निकाल डालता है। आहाहा! निश्चय अर्थात् सत्य। परमसत्य प्रमाण निश्चय। यह कहते हैं। आचार्य कहते हैं, निश्चयक्रिया कहूँगा। व्यवहारक्रिया कहूँगा, ऐसा नहीं कहते। आहाहा!

पंचम काल के मुनि कहते हैं, हम प्रतिक्रमण आदि निश्चयक्रिया जो अन्तर में रमणता, निर्विकल्प समाधि और शान्ति होती है। आहाहा! वह निष्क्रियक्रिया—राग की प्रवृत्ति की अपेक्षा से निष्क्रिय और स्वरूप में प्रवृत्ति की अपेक्षा से सक्रिय। यह आया न ? वह क्रिया कहते हैं न ? निश्चयक्रिया। वह क्रिया तो प्रवृत्ति स्वरूप में रमणता, वह क्रिया है। राग की अपेक्षा से निवृत्ति है, परन्तु स्वरूप में रमणता की अपेक्षा से सक्रिय-क्रिया है। आहाहा! एक गाथा में कितना समाहित किया है।

प्रतिक्रमणादि निश्चयक्रिया कही जाती है। अतीत (-भूत काल के) दोषों के परिहार हेतु... भूतकाल के दोष के त्याग के लिए **प्रायश्चित किया जाता है,...** प्रायश्चित, यह निश्चय। आहाहा! **वह प्रतिक्रमण है।** उसे प्रतिक्रमण कहने में आता है। आहाहा! पूर्व में जितने पुण्य और पाप आदि मिथ्याभ्रान्ति आदि जो दोष किये, उन सबका प्रतिक्रमण करना, उनसे हटकर स्वरूप में रमना.. आहाहा! वह प्रतिक्रमण की निश्चयक्रिया कहने में आती है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव का पुकार है। सभा के बीच आकर कहा है। आहाहा! समाज संगठित रहेगा या कैसे, उसकी दरकार उन्हें नहीं है। यह समाज मानेगा या नहीं, उसकी दरकार नहीं है। नागा बादशाह से आघा। वस्तु यह है।

हम निश्चयक्रिया कहेंगे। यह पुण्य और पाप आदि दोष, इनका अभाव करना, वह प्रतिक्रमण, प्रायश्चित है। शुभ-अशुभभाव से रहित अपने में लीनता करना, वह प्रायश्चित और वह प्रतिक्रमण है। आहाहा! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : हम करते हैं, वह व्यवहारप्रतिक्रमण कहलाता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ व्यवहार ? निश्चय बिना व्यवहार कैसा ? कठिन बात है, प्रभु ! वीतरागमार्ग परमेश्वर... भरतक्षेत्र में परमात्मा का विरह पड़ा। परमात्मा रह गये वहाँ (विदेहक्षेत्र में)। आहाहा ! यहाँ केवलज्ञान नहीं होता। केवलज्ञानी का विरह पड़ा, प्रभु ! यह बात पीछे रह गयी। कुन्दकुन्दाचार्य... आहाहा ! अवधिज्ञानी-मन:पर्ययज्ञानी कोई रहे नहीं, तथापि मैं तो सत् क्रिया कहूँगा। अन्तर की अविचल स्थिति आत्मा को सम्यग्दर्शनसहित, स्थिरता करने को मैं निश्चयक्रिया कहूँगा। आहाहा ! प्रभु ! परन्तु यह समाज तुलना करेगी या नहीं ? समाज मानेगी या नहीं ? समाज, समाज के घर रहे। मार्ग यह है। आहाहा ! नग्न मुनि हैं, वीतरागी हैं। जगत की कुछ नहीं पड़ी है। अपने कहा जाता है न ? नागा बादशाह से आघा। बादशाह को नहीं गिने, वह नग्न। अन्दर से नग्न और बाहर से नग्न। अन्दर से रागरहित और बाहर से वस्त्ररहित। आहाहा ! वे मुनिराज केवलज्ञानी परमात्मा की बात अविचल स्थिति से रहने के लिए (कहेंगे)। आहाहा ! निश्चयप्रतिक्रमण और निश्चय प्रायश्चित्त, निश्चय प्रत्याख्यान, पच्चक्खाण, वह क्रिया मैं कहूँगा। यह निश्चयक्रिया मैं कहूँगा - ऐसा कहते हैं। है ? आहाहा !

'आदि' शब्द से प्रत्याख्यानादि का सम्भव कहा जाता है। प्रत्याख्यान भी निश्चय क्या है, निश्चयक्रिया प्रत्याख्यान क्या है, वह कहेंगे। निश्चयभक्ति क्या है ? भगवान की भक्ति नहीं। भगवान की भक्ति तो राग है। आहाहा ! आगे आयेगा। निश्चयभक्ति कहूँगा, निश्चय समाधि कहूँगा, निश्चयप्रतिक्रमण कहूँगा, निश्चय प्रायश्चित कहूँगा, निश्चय प्रत्याख्यान कहूँगा, निश्चय संवर और आलोचना कहूँगा। आहाहा ! प्रभु ! पंचम काल के लोग हैं न ? साधारण प्राणी को। वे साधारण नहीं, भाई ! अनन्त गुण से ओपता-शोभता प्रभु है। ऊपर नहीं आया था ? पंच रत्नों से शोभित। उसके भाव से, हों ! आहाहा !

भगवान तो मार्गणास्थान से भिन्न, जीवस्थान से भिन्न, गुणस्थान से भिन्न, चौदह गुणस्थान से भिन्न है। आहाहा ! ऐसा जो पंचरत्न। आहाहा ! अखण्डानन्द प्रभु अभेद, जिसमें मार्गणास्थान ज्ञान की पर्याय, मति, श्रुत, अवधि आदि भेद; रंग, राग और भेद से भिन्न बात करूँगा। रंग शब्द से जड़ आदि पदार्थ; राग शब्द से भावकर्म विकारी; भेद शब्द से गुणस्थान आदि के भेद और प्रकार। इन रंग-राग और भेद से (भिन्न) अभेद बात

करूँगा। आहाहा! अमृत बहाया है। आहाहा! भगवान सन्तों ने, दिगम्बर मुनियों ने अमृत बहाया है। कहीं यह बात है नहीं। मुनि के सिवाय यह बात कहीं नहीं है। आहाहा!

जो स्वरूप समझे बिना पाया दुःख अनन्त,
समझाया उन पद नमो श्री सद्गुरु भगवन्त।
हे गुणवन्ता रे ज्ञानी अमृत बरसा रे पंचम काल में।

अमृतचन्द्राचार्य के कथनों ने अमृत बरसाया है। दिगम्बर सन्तों ने तो वन में रहकर सिद्ध के साथ बातें करते हुए अमृत बरसाया है! आहाहा! ऐसी बातें हैं। कहो, दिवाकरभाई! तुम्हारा वह लड़का... उसके भतीजे का.. क्या कहलाता है वह?...

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल। ...धूल में कुछ है नहीं। आहाहा!

शरीर में निर्धनपना, शरीर में रोग हो, वृद्ध अवस्था आवे, निर्धनता आवे, भोजन के लिए पाँच-पच्चीस रुपये भी न मिलते हों परन्तु जिसे आत्मज्ञान है, वह तो महाप्रभु भगवान है, महारत्न का धनी है। आहाहा! ऐसी बात है। एक-एक श्लोक में रत्न भरे हैं। मुनिराज ने, दिगम्बर सन्तों ने तो गजब काम किया है। केवलज्ञानी के पथानुसारी, अल्प काल में केवलज्ञान लेनेवाले हैं। एक-दो भव में केवलज्ञान लेकर मोक्ष पधारनेवाले हैं। आहाहा! अभी तो वैमानिक में हैं। कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य, पद्मप्रभमलधारिदेव अभी तो वैमानिक में हैं। आहाहा! पंचम काल में, इसलिए पुरुषार्थ नहीं कि केवलज्ञान हो, उसका अभाव है परन्तु अल्प काल में केवलज्ञान लेंगे, ऐसे केवलज्ञान की झंखना करते हैं। आहाहा! वहाँ से मनुष्यपना पाकर केवलज्ञान लेकर मोक्ष में चले जाएँगे। आहाहा! ऐसी स्थिति उनकी है। वे मुनिराज ऐसा कहते हैं, मैं निश्चयक्रिया कहूँगा अर्थात् प्रतिक्रमण आदि। जो आदि शब्द है, वह प्रत्याख्यान आदि का भी समावेश करने के लिए है। प्रत्याख्यान के और उन सबके अधिकार बहुत हैं।

इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में १३१वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:—

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।
अस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन।।

आहाहा! भगवान अमृतचन्द्राचार्य का पुकार है कि भेदज्ञान सिद्धा। है? **जो कोई सिद्ध हुए हैं, वे भेदविज्ञान से सिद्ध हुए हैं;...** है? श्लोक है या नहीं? आहाहा! अभी तक जो परमात्मा-णमो सिद्धाणं, जो सिद्ध हुए, छह महीने आठ समय में ६०८ सिद्ध होते हैं। अभी यहाँ से नहीं होते, महाविदेह में से होते हैं। महाविदेह में से छह महीना आठ समय में ६०८ (जीव) मुक्ति प्राप्त करते हैं। आहाहा! वे सब सिद्ध हुए, भेदविज्ञान से सिद्ध हुए। आहाहा!

इस राग के विकल्प से भिन्न करके, अपने निर्विकल्प अनुभव में आकर भेदविज्ञान से परमात्मा हुए हैं। जो राग की क्रिया है, उससे तो नहीं, क्योंकि उससे तो भेद करना है। आहाहा! तो व्यवहार से निश्चय होता है, यह बात नहीं रही। यह तो पहले प्रतिपक्ष आ गया। आहाहा! उसमें आ गया पहले। शुरुआत में अपने आ गया है न? प्रतिक्रमण का अधिकार चलता है, उसमें आ गया है।

अब, सकल व्यावहारिक चारित्र से और उसके फल की प्राप्ति से प्रतिपक्ष ऐसा जो शुद्धनिश्चयनयात्मक परम चारित्र उसका प्रतिपादन करनेवाला परमार्थ-प्रतिक्रमण अधिकार कहा जाता है। पहली गाथा है शुरुआत की। आहाहा! अरे! बहुत कठिन पड़े। क्या हो? लोगों को निवृत्ति नहीं मिलती और एकाध घण्टे सुनने जाएँ, वहाँ ऐसा सुनें, यह व्रत करो, अपवास करो, भक्ति करो, यात्रा करो। अरे रे! यहाँ तो कहते हैं कि हम निश्चयक्रिया कहेंगे। क्योंकि भेदविज्ञान से अभी तक अनन्त सिद्ध हुए हैं। कोई राग से सिद्ध हुए हैं, ऐसी बात जैनदर्शन में नहीं है।

भेदविज्ञान से सिद्ध हुए हैं; जो कोई बँधे हैं,... अभी तक **वे उसी के (भेदविज्ञान के ही) अभाव से बँधे हैं।** राग का भेद किया नहीं तो बँधा है। आहाहा! श्लोक बहुत ऊँचा है। संवर अधिकार में है। अभी तक जितने सिद्ध हुए हैं, वे सब राग से भिन्न होकर भेदज्ञान से सिद्ध हुए हैं और जो कोई अभी तक बंधन में पड़े हैं, वे भेदज्ञान के अभाव से बंधन में पड़े हैं। राग मेरी चीज़ है, मुझे राग से लाभ होगा, ऐसा (मानकर) भेदविज्ञान के अभाव से बंधन में आये हैं। विशेष कहेंगे.....

(***श्रोता :*** प्रमाण वचन गुरुदेव!)